ISBN: 978-93-90847-27-3

1. संत परम्परा में ईश्वर की परिकल्पना और गुरु नानकदेव का संतपरम्परा में स्थान

सुनाली बरगोहाँइ

एम. फिल शोधार्थी,
राजीव गांधी विश्वविद्यालय,
रोनो-हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश.

1. 'भक्ति' शब्द का आशाय:

मध्यकालीन भक्ति आदोंलन भारतवर्ष के इतिहास की एक युगांतकारी घटना है। भारतवर्ष में ऐसा पहली बार हुआ जहाँ समस्त राष्ट्र ने एक साथ भाग लिया। दक्षिण से उत्तर तक और पश्चिम से पूर्व तक के सभी स्थानों में एक ही लहर प्रवाहमान हुए। सभी ओर से प्रवाहित हो रहे भक्ति की इस विराट लहर ने भारतीय जनमानस को शीतलता प्रदान करने के साथ ही भारतवर्ष को एक समग्र राष्ट्र के रूप में पहचान दिलायी।

भारतीय साधना के क्षेत्र में ज्ञान, भक्ति, प्रेम और कर्म के समन्वित रूप को स्वीकारा गया है। समाज सेवा के माध्यम की एक अनन्य महान शक्ति के रूप में भक्ति प्रतिष्ठित है । उपास्य देव के प्रति निष्ठा तथा शरणागति की भावना भक्ति की प्रथम कसौटि है। 'भक्ति' शब्द की व्युत्पति 'भज्' धातु से मानी गई है, जिसका शब्दिक अर्थ है – भजन या सेवा करना। इसके अलावा भक्ति का अर्थ पूजा, उपासना, अनुराग आदि में भी स्वीकृत है। सामान्यतः भक्ति का अर्थ है – अपने आराध्य के गुण और स्वरूप के प्रति सेवा भाव से लीन होना। ईश्वर और जीव के पारस्परिक संबंध को निर्धारण करने की प्रक्रिया है भक्ति। भक्ति वह तत्व है जिसके माध्यम से ईश्वर के प्रति जीव की सेवा और प्रेम भावना को प्रकट करती है। एक प्रकार से भक्ति ईश्वर और जीव में तादाम्य स्थापन करने वाली वह विश्वास है जिसके जरिए मानव मन शीतलता से परिपूर्ण होता है।

भक्ति के स्वरूप को विव्दानों के विभिन्न परिभाषाओं के जरिए समझने की कोशिश कर सकते हैं। इन परिभाषाओं में भक्ति के प्रत्येक तत्व को महत्व दिया गया है। नारद भक्ति सूत्र में व्यास और गर्गमुणि ने पूजा या कीर्तन आदि में होने वाले प्रगाढ़ प्रेम को ही भक्ति माने हैं।

महर्षि नारद के अनुसार – ''सा त्वस्मिन परमप्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च''[1]। अर्थात भक्ति परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा है, जिसे प्राप्त करके मनुष्य का जीवन सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाती है। स्वामी रामानुजाचार्य ने भक्ति को स्नेहपूर्वक किए गए भगवत् ध्यान या परमात्मा का निरंतर स्मरण रूप में स्वीकारा है। भारतीय धार्मिक मान्यता के अन्यतम ग्रंथ श्रीमद् भागवत में मत है कि निष्काम भाव से भगवान में स्वयं को अनुरागमय कर जाना ही भक्ति है।

हिन्दी भक्ति साहित्य के अन्यतम स्तम्भ गोस्वामी तुलसीदासजी की मान्यता है कि हरि के भजन में तल्लीन होकर हृदय में रामरूपी अमृत का पान करना ही भक्ति है।

मध्वाचार्य ने भक्ति का सम्बन्ध ज्ञान और स्नेह से माना। उनके अनुसार भगवान में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुद्दढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है। यह परम प्रेम जो पुर्वज्ञान से उत्पन्न होता है और सर्वदा विद्यमान रहता है, भक्ति कहा जाता है[2]।

'भक्ति रसायन' में मन की स्थिति को भक्ति के साथ जोड़ते हुए कहा गया है ''मन की उस कृति को भक्ति कहते हैं जो आध्यात्मिक साधना से द्रवीभूत होकर ईश्वर की ओर प्रवाहित होती है'' [3] ।

हिन्दी साहित्य के प्रसिध्द इतिहासकार रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति के लिए श्रध्दा और प्रेम को अनिवार्य माना है। आचार्य हजारीप्रसाद व्दिवेदी के विचार में भक्ति भगवद् विषयक प्रेम है, जो अनुकूल भाव से भगवान के विषय में अनुशीलन है।

इन परिभाषाओं के आलोक में हम कह सकते हैं कि भक्ति अनुरक्ति, प्रेम, स्नेह, ज्ञान, कर्म आदि के योग कि मानव हृदय की वह भावना है जो अनन्य रूप में, निष्काम भाव से आराध्य से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करती है। सभी परिभाषाओं में एक तत्व जो मौजूद है वह है परमात्मा के प्रति अनुराग। भक्ति के लिए आलम्बन का होना भी इन परिभाषाओं में अनिवार्य माना गया है और परमात्मा ही भक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ आलम्बन माना जा सकता है। परमात्मा के प्रति भक्त के हृदय में असीम श्रध्दा और विश्वास ही भक्ति की सफलता है। भक्त अपने आराध्य देव को ही सर्वशक्ति मान मानते हैं और साधक के रूप में साध्य के प्रति आत्मसमर्पण की भावना रखते हैं। भक्ति इसी साध्य और साधक के बीच का साधन है।

2. संत साहित्य में भक्तिः

मध्यकालीन निराशा और अप्रतिष्ठित समाज ने भारतीय जनमानस में हताशा तथा विक्षुब्ध की स्थिति पैदा कर दी थी। समाज का वास्तविक स्वरूप विषमता और भेदभाव आदि में बदलने लगी थी। समाज में चारों ओर अनिश्चयता तथा अन्धकारमय वातावरण सृष्टि होने की वजह से समाज भीतर ही भीतर खोखला होता जा रहा था। ऐसे में समाज का मार्गदर्शन और सामाजिक पुर्ननिर्माण का कार्य अधिक आवश्यक हो गया। समाज की यह आवश्यकता भक्ति काव्य के माध्यम से पूर्ण हुआ।

भक्ति के पध्दति अनुसार भक्ति काव्य में प्रमुख रूप से दो धाराएँ प्रवाहित हुई – निगुर्ण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा। निगुर्ण भक्ति धारा ब्रह्म के निराकार स्वरूप की उपासना करती है तथा सगुण भक्ति धारा में ईश्वर के साकार और गुण की उपासना किया जाता है। निगुर्ण कवियों ने परमात्मा, सर्वव्यापकता रूप को स्वीकार किया है, उनके अनुसार ईश्वर हमारे हृदय में ही विद्यमान है उसे खोजने के लिए तीर्थस्थानों की यात्रा की आवश्यकता नहीं है। निर्गुण पंथ की यह मान्यता है कि ब्रह्म निराकार है, द्दश्यमान सत्ता में ब्रह्म का अस्तित्व नहीं है

बल्कि उनका अस्तित्व आत्मा और मन की अनुभूति में है। भक्ति काव्य में ईश्वर की सभी मान्यता को महत्व दिया गया है परन्तु यह निर्विवाद है कि भक्ति- भाव सभी में समान रूप से व्याप्त है।

संत साहित्य जनसाधारण के हृदय को स्पर्श करने वाली साहित्य है। भक्ति जो मनुष्य के हृदय की अनुभूति है, संत साहित्य में हृदय के इसी अनुभूति को मनुष्यता के चीढ़ी के रूप में स्थान दिया गया है। ज्ञान और कर्म रूपी भक्ति के व्दारा संत साहित्य ने सम्पूर्ण भारतीय चेतना को जागृत और परिचालित किया। एक प्रकार से कहा जाए तो संत काव्य में लोकहित और यथार्थ के पृष्ठभूमि पर भक्ति को अपनाया गया।

संत भक्त कवियों ने काव्य सृजन के माध्यम से परमात्मा के प्रति ज्ञान, श्रध्दा और प्रेम की संयोग से भक्ति का मार्ग प्रशस्त किया साथ ही जीवन-मूल्यों को जन-मन में प्रतिष्ठापित किया। संत काव्य में ईश्वर के निराकार रूप को भक्ति का आलम्बन बनाया गया तथा ज्ञान को ईश्वर प्राप्ति का साधन माना।

मनुष्यता की प्रतिष्ठा तथा आत्मा की शुध्दि संत कवियों ने भक्ति के मूल में स्थापित किया। संत काव्य के भक्ति का स्वरूप तथा पद्धति पर ध्यान दे तो सामने आती है कि संतों की भक्ति प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित है। समग्र रूप से संत काव्य की भक्ति पद्धति इस प्रकार है-

भक्ति मनुष्य के अन्तरआत्मा की पुकार है। अपने आराध्य जन के प्रति प्रेम और श्रध्दा के सम्मिलित भाव का नाम ही भक्ति है। मध्यकाल में धर्म का व्यवहारिक और सैध्दान्तिक पक्ष में दूरियाँ बढ़ गई थी और धार्मिक जटिलता के कारण धर्म जनसाधारण के लिए बोझ बनकर रह गया था। ऐसे में भक्ति काव्य परम्परा ने धर्म को साधारण जनमानस में सरलीकृत, परिष्कार और व्यवहारिक पक्ष के साथ प्रस्तुत किया।

भक्ति काव्य परम्परा में जो चार पृथक धाराँए चली सभी के मूल में मुख्यतः भक्ति का भाव ही था। भक्त कवियों नें भक्ति को कभी साकार रूप में तथा तो कभी निराकार रूप में स्थापित किया संत साहित्य में भक्ति को प्रेम और ज्ञान के धरातल पर निराकार रूप में अपनाया गया। संत काव्य में भक्ति को मोक्ष प्राप्ति का सहज साधन के रूप माना गया।

सतों ने भक्ति में साधना के प्रति निष्ठा और चित्र की एकाग्रता को प्रमुख माना है। लोकभाषा के माध्यम से संत कवियों ने भक्ति को सर्वग्राह्य बनाने का प्रयास किया। अवतारवाद का खंडन करके भक्ति के एकेश्वरवादी स्वरूप पर बल दिया।

भक्ति के माध्यम से ही परमात्मा की प्राप्ति की संत कवियों ने स्वीकार किया है। कबीर, नानक जैसे संतों ने जीवन का परम पुरूषार्थ भक्ति को ही माना। संत कवियों के काव्य में भक्ति की अबाध तरंगिनी लगभग सभी पदों में प्रवाहित हुई है।

वैष्णव धर्म के मूल ग्रंथ श्रीमद् भागवत में भक्ति के नौ पध्दति अर्थात् नवधा भक्ति का वर्णन किया गया –

"श्रवणं कीर्तनं, विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वंदनं दास्य सख्यमात्म निवेदनम्"।

व्यक्ति अपने दैनन्दिन जीवन में प्रभू के गुणों का श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवा, पूजा और वंदन और प्रभू को सखा समझकर अपनी आत्मा को उनके लिए न्योछावर करना ही भक्ति है।

भगवत में वर्णित भक्ति के ये स्वरूप को सामान्यतः सगुण उपासकों में प्राप्त होते हैं लेकिन संत साहित्य में विशेषकर कबीर और गुरू नानक के पदों में नवधा भक्ति के लक्षण पाये जाते हैं।

कबीर भक्ति में श्रवण की प्रक्रिया को महत्व देते हुए कहते हैं – 'गोव्यंद कै गुंण बहुत हैं, लिखे जु हिरदै माँहि'[4]। उनके अनुसार निरंतर श्रवण करने के परिणाम स्वरूप प्रभु के गुण हृदय पर अंकित हो जाते हैं।

गुरू नानक देव भी श्रवण भक्ति को व्यक्ति के जीवन में अत्यतं महत्वपुर्ण मानकर कहते हैं कि श्रवण से साधारण व्यक्ति भी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। श्रवण के व्दारा सत्य, संतोष और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होते हैं, तथा पढ़-पढ़ कर मान को लाभ करते हैं और साथ ही सहजावस्था के कारण सदैव आनन्दित रहते हैं। फलतः दुख और पाप भक्त के जीवन से नाश हो जाते हैं –

"सुणिऐ सतू संतोखु गिआतु। सुणिऐ अठसठि का इसनातु।

सुनिऐ पडि पडि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु।।

नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दुख पाप का नासु"।। [5]

भक्ति के दूसरे चरण में संत कवियों ने स्मरण को अत्यधिक महत्व दिया। परमात्मा के नाम का स्मरण, रूप, गुण, प्रभाव, तत्व आदि का स्मरण करते-करते अपने शरीर को भूलाकर भगवान के स्वरूप में ही लीन हो जाना स्मरण भक्ति है। कबीर भक्ति में स्मरण का स्थान सर्वोपरि मानते हैं –

"पहिले मन में सुमिरो सोई।

वा सम तुलै अवर नहीं कोई"।। [6]

दूसरी जगह गुरू नानक भी स्मरण की महत्वा को प्रकट करके कहते हैं –

"अवरू न अउरवधु तंत न मंता। हरि हरि सिमरणु किहाविख हंता।

तूं आपि भुलावहि नामु विसारि। तूँ आपे राखि किरपा धारि"।। [7]

अर्थात् पाप को हरण करनेवाले हरि-स्मरण के अतिरिक्त न और कीई औषधि है, न तंत्र है और न मंत्र है। नानक कहते हैं प्रभु अपने नाम की विस्मृत कराकर स्वयं को भुला देता है। प्रभु ही कृपा करके भक्तों की रक्षा करता है। नानक मानते हैं कि –

जिस नीच व्यक्ति को कोई नहीं जानता ईश्वर के नाम का जाप करने से चारों दिशाओं में उसे प्रतिष्ठा मिलती है। हरि का नाम स्मरण से व्यक्ति की तृष्णा और भूख भी अनुभव नहीं होता।

भगवान के प्रति भक्त अनन्य भाव से स्वयं को समर्पित कर भक्ति के राह पर चलते हैं। अपने आराध्य को मनुष्य जब भक्ति के माध्यम से स्मरण करते हैं तब मानव शरीर सर्वात्मक रूप से भक्ति के साधन के रूप में कार्य करती है।

तन, मन और पाँचो इन्दियों व्दारा अपने अन्दर के अज्ञान को दूर करने के लिए आह्वान करते हैं। संतों ने भक्ति के लिए श्रवण, स्मरण आदि को मुख्य रूप से महत्वपूर्ण मानते हुए कीर्तन, दास्य भाव, आत्मनिवेदन आदि को साथ लेकर भक्ति की महत्वा की स्थापित किये हैं। इन सब के अलावा सत्सगति, श्रध्दा, अदम्य विश्वास, सदाचरण, सत्याचरण, सरसता और निष्कपटता को भक्ति के मार्ग में साधन माना।

1. संत परम्परा और गुरू नानक देवः

मध्यकालीन हिन्दी काव्य की गौराम्वित करने वाले संत काव्य परम्परा में गुरू नानक का महत्वपुर्ण स्थान रहा। संत परम्परा के अन्य कवियों के भाँति नानक का उद्देश्य भी काव्य रचना की अपेक्षा लोकोपदेश देना था। जो वाणी के साथ-साथ काव्य का रूप लिया। गुरूनानक जी का जीवन काल भारतीय इतिहास में युगांतरकारी रहा। वे संत परंपरा के प्रवर्तक महात्मा कबीर, संत रैदास, चैतन्यदेव और शंकरदेव जैसे भारतवर्ष के महान आध्यात्मिक गुरूओं के समकालीन थे। इनका जन्म 1469 में पंजाब के तलवंडी नामक स्थान में हुआ। इनके जन्म के समय और स्थान को निर्धारित करने में सभी विद्वानों का एक ही मत सामने आया है। 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' पुस्तक में बच्चन सिंह ने नानक का जन्म स्थान लाहोर से 30 मील दूर तलवंडी नामक गाँव में माना है।[8]

डॉ. बलदेव वंशी का मानना है कि गुरूनानक का जन्म सन 1469 में कार्तिक पूर्णिमा को पंजाब के तलवंडी नामक गाँव में हुआ जो वर्तमान में ननकाता साहिब के नाम से जाना जाता है[9]। गुरू नानक के समय निर्धारण करते हुए लेखक हरिराम गुप्त अपने एक आलेख में लिखते हैं – ''1469 में जब गुरू नानक जन्म हुआ, उत्तर भारत का शासक बहलोल लोदी

(1451-1489) था। उसके उत्तराधिकारी का नाम सिकन्दर लोदी (1489-1817) था। इसके बाद उत्तराधिकारी का नाम इब्राहिम लोदी (1817-1826) शासक बना। गुरू नानक के समय में बाबर ने मुगल साम्राज्य की नीवं रखी, तथा बाद में उन्ही के समय में बाबर के बाद उसका पुत्र हुमायुँ उसका उत्तराधिकारी हुआ''[10]।

नानक के जन्म से सम्बन्धित एक अलौकिक स्थिति को प्रकट करते हुए डॉ. गिरिराजशरण लिखते हैं – ''नानक के जन्म के समय वह स्थान, जन्म के समय वह स्थान, जहाँ पर नानक का जन्म हुआ था, अलौकिक ज्योति से भर उठा। शिशु के मस्तक के आस-पास तेज आभा फैली हुई थी। जन्म लेते समय नवजात शिशु रोता है किन्तु शिशु नानक के चेहरे पर मुस्कान थी''[11]।

उपर्युक्त सारे मतों को ध्यान में रखकर कह सकते हैं कि गुरू नानक के जन्मतिथि और जन्मस्थान के सन्दर्भ में विव्दानों में कोई मतभेद नहीं है। अर्थात् उनका जन्म 1469 में तलवंडी गाँव में ठहरती है।

गुरू नानक के माता-पिता के सन्दर्भ में डॉ^{0} जयराम मिश्र का मानना है कि – ''इनकी माता का नाम तृप्ता और पिता का नाम मेहता कल्याणदास था। किन्तु मेहता कालू के नाम से विख्यात थे। मेहता कालू क्षत्रिय वर्ण के वेदी वंश के थे''[12]। आगे नानक के पिताजी की नौकरी के संदर्भ में डॉ. जयराम मिश्र लिखते हैं – ''मेहता कालु राय बुलाय के तहसीलदार थे वे अत्यन्त विश्वासपात्र और ईमानदार थे। राम बुलाय की मेहता कालू पर असीम कृपा और विश्वास था। वे समृध्द सम्पन्न और सुखी थे तथा समस्त गाँव में उनका बहुत सम्मान था''[13]।

गुरूनानक का बाल्यकाल अत्यंत स्वच्छंद ज्ञात होता है। जन्म से ही वे दैवी प्रतिभाओं से विभुषित थे। गुरूवचन सिंह तालिब जी ने अपना मंतव्य अभिव्यक्त करते हुए लिखा है – ''बचपन से ही वे चितंनशील प्रकृति के थे और जैसे-जैसे बड़े होते गये, विभिन्न धर्मो के सतों के सत्संग में उनकी रूचि बढ़ती गयी''[14]। नानक जी का शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से पाठशाला में ही शुरू हुआ। उस समय में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के तहत ही प्रत्यक्षतः सहभागी होकर संस्कृत, अरबी, फारसी आदि भाषाओं का ज्ञान अर्जन किया। अपने अध्ययन के दौरान नानक अपने गुरू को प्रश्न करते हैं – '' आप जो पढ़ा रहे हैं, उसे पढ़कर क्या मैं परमात्मा को जान लूँगा ? नानक के प्रश्न से अध्यापक चौक गया। उन्होने अपने उत्तर में बताया कि परमात्मा को जान लेना असंभव है। नानक ने अध्यापक को कहा कि मुझे वही तरीका बताँए जिससे मैं परमात्मा को समझ सकुँ''। नानक बचपन से ही कुशाग्र बुध्दि होने के कारण सामान्य विद्दार्थियों की तरह विद्यार्जन का लक्ष्य केवल व्यवहारिक ज्ञान की प्राप्ति न था बल्कि वे ईश्वर प्राप्ति की कामना करते थे।

गुरू नानक का वैवाहिक जीवन साधारण गृहस्थ व्यक्ति के तरह ही है। उनका वैवाहिक परिवार पत्नी,पुत्र आदि से पूर्ण था। नानक जी का विवाह संवत 1544 की 24 जेठ में हुआ। जब नानक का विवाह हुआ तब वे केवल 18 वर्ष के थे। उनकी पत्नी का नाम था सुलक्षणा।

विवाह के बाद उनके घर दो पुत्रों का जन्म हुआ पहले पुत्र का नाम था श्रीचंद और दूसरे का नाम था लक्ष्मीदास। संत परमारा में गुरूनानक एकमात्र ऐसे संत थे जो गृहस्थ और संन्यासी दोनों में बने रहे। कुछ समय पश्चात उन्होने अनुभव किया कि सीमित क्षेत्र में रहकर वे भूले भटके लोगों को उद्धार नहीं कर सकते तब उन्होंने गृहस्थ को त्यागने का निर्णय लिया। परतुं संन्यास लेने के बावजुद भी वे गृहस्थ के कर्तव्यो से मुँह नहीं फेरा। उनके व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में कुल मिलाकर कह सकते हैं कि वे सांसारिक जीवन में हो केवल लिप्त नहीं रहकर समाज के उद्धार को मूल वृत्ति के रूप में स्वीकार किया।

गुरू नानक बहुआयामी व्यक्तित्व के अधिकारी थे। भारतीय समाज में वे एक संत के रूप में, एक कवि के रूप में तथा धर्म संस्थापक के रूप में ख्याति प्राप्त की। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण संसार के हर एक प्रसंग को तर्क के साथ लोगों में प्रस्तुत किया।

नानक के व्यक्तित्व को लेकर जयराम मिश्र का मत है कि उनके पूर्ण व्यक्तित्व से किसी तत्व को पृथक नहीं किया जा सकता। यहीं कारण रहा कि उन्होने योगियों, फकीरों, पण्डितों और मुल्लाओं पर विजयी पायी और उनके आतंक से सामान्य जनता को मुक्ति दिलायी। दार्शनिक विचारों, तर्क, वितर्को और शास्त्रार्थ में गुरू महाराज उपयुक्त लोगो से बढ़कर निकले। उन्होने अपनी अलौकिक तर्क शक्ति एवं प्रत्युत्पन्नमति से सबको पराजित किया। नानक के अपूर्व व्यक्तित्व के कारण ही संत परम्परा में उनको अग्रणी स्थान मिला। जिसका लक्ष्य केवल भक्ति न होकर राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उत्थान भी था। वे अपने समय के तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक और समाज के आमानवीयता को सजग और सक्रियता के साथ खुली आँखों से विरोध किया और संत परम्परा के अनुगामी के व्दारा आतंरिक एकता और संगति को प्रश्रय दिया ।

मध्यकालीन संत और व्दारा प्रचारित धर्म आन्दोलन का समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उन दिनो विभिन्न वर्गो के आर्थिक, सामाजिक सम्बन्धों को व्यक्त और प्रतिबिम्बित धर्म व्यवस्था के माध्यम से ही किया जाता था। उस समय लोकमानस में मनुष्य की मुक्ति का संघर्ष धार्मिक स्तर पर ही होता था। उस समय लोकमानस में मनुष्य की मुक्ति का संघर्ष धार्मिक स्तर पर ही होता था। धर्म ही एक ऐसा माध्यम था जो युग चेतना को साथ लिएचल रहा था। धार्मिक क्षेत्र में ईश्वरोपासना के साथ-साथ मनुष्य मात्र की समता का उद्घोष और निम्न समझी जाने वाली जातियों के प्रति सहानुभूति का भाव तत्कालीन युग चेतना को व्यक्त करते हैं। गुरूनानक की रचनाओं में इस भावाभिव्यक्ति की नैतिक, दार्शनिक और निवेदन परक स्थिति का बड़ा मार्मिक परिचय मिलता है।

हिन्दी साहित्य में गुरू नानाक देव जी का व्यक्तित्व अपने- आप में अनोखा और असाधारण हुए। वे संत मनीषिओं की परम्परा का प्रमुख प्रतिष्ठित पदाधिकारी के रूप में कार्य किए। उन्होने अपने युग के प्रति अपने उत्तरदायित्व का पूरी श्रद्धा और भक्ति पूर्वक निर्वाह किया। नानक ने अपनी पैनी दृष्टि से जगत और आध्यात्म के रहस्यों को उद्घाटन करके अपनी रचनाओ में अभिव्यजंन किया। बच्चन सिंह गुरू नानक के व्यक्तित्व की तुलना संत कबीर

के साथ करते हुए लिखा है – "उनकी वाणीयों का कथ्य मूलतः वही है जो कबीर का है, जैसे नाम माहात्म्य, गुरू महिमा, जाति-पाँति का विरोध, ब्रह्म की वैयक्तिक अनुभूति, सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि पर उनके स्वर में गहरी शाति, शीतलता और निवैयक्तिकता है। संभवतः अपनी इन्ही गुणों के कारण वे राजनीतिक और धार्मिक अत्याचारों का मुँहतोड़ उत्तर दे सके''[15]।

भारतीय संत साहित्य के मुल में हैं समानता, कर्मकांड और पण्डितों का विरोध, जातीय पूर्वाग्रहों और सामाजिक भेदभाव के विरोध में आवाज उठाना तथा प्रेम एवं भातृभाव, नैतिक सरलता और आत्मसंस्कार का संदेश को लोगों में स्थापित किया। नानक भी अपने वाणीयों में इन्ही विचारधाराओं को प्रकट करते हुए संत परम्परा के पथ पर अग्रसर हुए। अछुत या नीचले समझे जाने वाले वर्ग के पक्ष में गुरूनानक संकोच रहित होकर कहते हैं–

"जित्थे नीच संभालिअन,

तित्थे नदरि तेही वखसीस''।

अर्थात ईश्वर की कृपा दृष्टि वहीं पड़ती है जहाँ नीचो को स्थान प्राप्त हो यानी उनको सम्भाला गया हो। इसके साथ ही नानक ने अपना कार्य क्षेत्र को उस नीचले पायदान के बीच ही घोषित किया –

"नीचा अन्दरि नीच जाते, नीची हूँ आति नीच।

नानक विवके संगि साथ, बडिया सु क्या रास"।।

सामन्ती सामाजिक व्यवस्था में उच्च कुल में जन्म लेने का अहंभाव काफी हद तक व्याप्त था। परिणाम स्वरूप लोग मित्थ्यात्व के जाल में आकर मानवीय एकता को छिन्न भिन्न कर समाज को गलत राह पर लेते चले गए। गुरू नानक के समय में विभेद की यह स्थिति चरम पर थी। ऐसी अवस्था में उन्होंने लोगों को वर्ण एवं जाति के भेद-भाव को छोड़ने के लिए आह्वान करते दिखाई देते हैं। जाति के भेद को वे मानवीय समता के मार्ग में शूल मानते हैं जो समाज के प्रत्येक मन-मस्तिष्क में बिखरा हुआ है। उनके अनुसार ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म या सृष्टिकर्ता का विचार करता है, न कि वह जो अपने वर्ण का अभिमान दिखाकर लोगों को भटकाता हो –

"जाति का गरबत करियद्‌द्र कोई।

ब्रह्म बिदें सी ब्राह्मण होई"।।

गुरू नानक मध्ययुगीन समाज में एक लोक नायक के रूप उभरे। वे अपने समन्वयकारी दृष्टि से बिखरे हुए लोगों के बीच एकता के तत्व को स्थापित किया। समाज में एक समान भावभूमि

का निर्माण ही नानक के वाणीयों का मुलमंत्र था। नानक के रचनाओ में परम्परागत रूढ़ियों का सम्पूर्ण विरोध नहीं है बल्कि परम्परागत तथ्यों का नये अर्थ के साथ प्रस्तुति है ।

नानक योग का विरोध नहीं करते, वे केवल योग के मार्ग में आये हुए बाह्याडम्बर और रूढ़ियों का विरोध करते हैं। वे कहते हैं योग की प्राप्ति तो माया में रहकर माया से मुक्ति में है, न कि बाह्य उपकरण के आश्रय लेने में-

"जोग न खिया जोग न डंडे जोग नभसम चढ़ाइऐ।

जीग न मुंदी मूंड मुउइऐ जोग न सिंगी बाइऐ।

अंजन माहि तिरंजनि रहिऐ जोग जुगति तउ पाइये"।

नानक का अवतरण भक्तिकालीन साहित्य में एक वरदान सिद्ध हुआ। उन्होने सांसारिक जीवन को यथावत् मान्यता देकर आध्यात्म की जो साधना बतायी वह सबसे विलक्षण थी। नानक बताते है कि जीवन कर्तव्य भूमि है। अतः जीवन की सार्थकता प्रत्पक्ष भूमि पर निर्वाह करना है न कि उससे विरत होना। परलोक साधना इह लोक साधना में हो अन्तर्भूक्त है। गुरूनानक के अनुसार हिन्दुओं में मुर्ति पूजा का प्रचलन एक बड़ी कमजोरी है। इसी कमजोरी से मुक्त की प्रयास में वे धर्म की ब्राह्य आडम्बर और रूढ़ियो से अलग करके व्यवहारिक धरातल पर प्रस्तुति की चेष्टा की। इस सम्बन्ध में उन्होने लिखा है – "**हिन्दु बिल्कुल भुले हुए कुमार्ग पर जा रहे हैं जो नारद ने कहा है वही पूजा करते है। उन अंधों और गूंगी के लिए घनघोर अंधकार है। वे मर्म और अनपढ़ पत्थर लेकर पूजते है। हे भाई, जिन पत्थरो को पूजते है, यदि वे स्वयं हो पानी में डूब जाते है तो उन्हे पूज कर तुम संसार से किस प्रकार तर सकते हो?**"[16]

(नानक – वाणी, विहागड़े की वार श्लोक)

कुछ लोग धार्मिक कर्मकाण्ड के जरिए धर्म का प्रदर्शन मात्र करते हैं। वे उस धर्म पर आचरण नहीं रते। नानक ऐसे लोगो को निन्दा करते हुए उन्हे सदमार्ग पर चलने का परामर्श देते हैं –

"पड़ि पुस्तक संधिआ वारं। सिल पूजसि बगुल समाधं

मिख झुठ विभुषण सारं" [17]

(नानक-वाणी, आसा दी वार)

व्यक्ति पुस्तक पढ़ते है, संध्याकालीन पुजा करते है, किन्तु उनके मूल रहस्यों को नहीं समझते है। पाण्डित्य प्रदर्शन के निमित्त वाद-विवाद में प्रखरता दिखाते हैं। जो लोग पाषाण की पुजा करते हैं तथा बगुले की भाँति समाधि लगाते हैं वे लोग सच्ची समाधि से कोसो दूर रहते हैं।

वह मात्र धार्मिक विद्वता और समाधि का दिखावा करते है। मुख में झुठ का पर्दा बिछाकर लोहे के आभुषण को सोना रूप में दिखाते है। अर्थात विद्वता के झुठे आभूषण के व्दारा धर्म को गलत राह पर प्रस्तुत करते हैं।

नानक देव व्यक्ति के आन्तरिक स्थिति को ऊपर उठाने का प्रयास धर्म के माध्यम से करते हैं। उन्होने धर्म के आन्तरिक भावों को व्यक्तित्व में ग्रहण करने पर बल दिया है। वे धर्म के उन गुणों को अपनाने के लिए मनुष्यो को

प्रेरित किये जिससे मानवता का कल्पना हो, भातृ-भाव बढ़े, सहिष्णुता की भावना का प्रसार हो लोग सत्य, संगम, दया, लज्जा गुणों के प्रति आकृष्ट हो।

हिन्दी साहित्य के अन्यतम व्यक्तित्व तुलसीदास जी ने गुरू के महत्व को बतलाते हुए कहा है कि-

"गुरू बितु भव निधि तरइन कोई

जो विरुंचि संकर सम होई" [18]

(रामचारित मानस, उत्तर काण्ड)

नानक भी गुरू की महत्वा को व्यक्ति जीवन में ज्योतिर्मय पक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। मनुष्य के भौतिक जीवन के व्यक्तिगत पक्ष हो या सामाजिक पक्ष प्रत्येक स्थिति में बिना निर्देशन के भटकाव की सम्भावना रहती है। दिशा निर्देशन के लिए गुरू का होना नानक अनिवार्य मानते हैं।

सदगूरू वह है जो जीव को माया से रक्षा करता है। सह्रदय को उसके व्दैत भाव से मुक्ति दिलाकर अविनाशी परब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापन करता है। वहीं गुरू योग्य है, जिसके बिना मनुष्य अन्धे की तरह भटकता है तथा जिसके मिलने से ज्ञानचक्षु खुल जाते हैं वहीं सदगुरु है-

"जिस मिलन मत होम आनदु सो सति गुरू कहिए" [19]

(गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 168 महला 4)

संत परम्परा के अनुरूप गुरू नानक देव भी ऐकेश्वरवादी कवि हुए। उन्होने ब्रह्म को संसार का मूलतत्व के रूप में तथा सृष्टिकर्ता और संहारक के रूप में स्वीकार किया। वे मानते हैं कि परमात्मा सभी में व्याप्त है। आवश्यक है केवल नाना रंगो में उनको अनुभव करना। प्रभु स्वयं प्रत्येक वस्तु में विद्यमान होकर नाना विधि व्दारा इस संसार को सृष्टि किये हैं। नानक कहते है –

"तूं करता पुरखू अंगमु है आपि सृसती उपाती।

रंग परंग उपारजना बहु बहु विधि भाती"।।

वे यह भी कहते हैं कि ईश्वर की प्रतिमूर्ति बनाया या स्थापित नही किया जा सकता बल्कि गुरु ज्ञान के व्दारा अनुभव किया जा सकता है –

"भापिया न जाइ कीर्तन हीइ।

आपे आपि निरंजन सोइ"।

गुरूनानक जी ने अपने क्रान्ति द्रष्टा व्यक्तित्व के बल पर संत साहित्य में तो अपना जगह बनाई और साथ ही सम्पूर्ण मानव को प्रभावित किया। उन्होने समस्त उत्तर भारत में सामाजिक चेतना जगाकर जन-गण को जागृत किया तथा अन्याय और अत्ताचार के विरूद्ध जनता को संगठित किया आध्यामिकता के मार्ग प्रशस्ट करते हुए निराशा जनता को चेतना में आत्म विश्वास और ईश्वर विश्वास के भावना की पुर्नस्थापना की। नानक अपने मौलिक चितंन के साथ सामने आए और अपने युग की परम्पराओ, विश्वासों, रीति-रिवाजो को देख परखकर अपना विचार प्रस्तुत किये। नानक ने मानव को मानव के समीप लाने के लिए बनावटी और अमानवीय भेदभाव को मिटाने की कौशिश की। एक प्रकार से नानक एकता और समन्वय के प्रतीक थे। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण सृष्टि एक ही ईश्वर की बनाई हुई है। सभी मनुष्य, जातियाँ, सभी धर्मो के अनुयायी एक ईश्वर की ही संतान है। वर्णो, जातियों में बटे मनुष्यो को जन्म के कारण छोटा बड़ा निर्धारित नहीं किया। मनुष्य का निर्धारण उन्होंने श्रम और कर्म करते के ऊपर किया जो जैसा कर्म करेंगे वही उनका स्थान होगा। नानक ने अपने ढंग से समसामयिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करते हुए जन साधारण को उनके साथ हो रहे अन्याय पर आधारित व्यवहार पर उन्हें सजग किया। उन्होंने धर्म को मानव कल्याणकारी मार्ग सिद्ध करने की कोशिश किया। नानक का धर्म एवं समाज दर्शन मुखतः व्यवहारिक रहा जो सम्पूर्ण भारतीय समाज ने अपनाया।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

[1] ब्रह्म सूत्र रामानुज भाष्य प्रथम सूत्र का भाष्य
[2] डॉ. हिरण्म्य – हिन्दी और कन्नड में भक्ति आंन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन
[3] डॉ. हिरण्म्य – हिन्दी और कन्नड में भक्ति आंन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन
[4] कबीर-ग्रंथावली, पृ.62
[5] डॉ. जयराम मिश्र- नानक वाणी, पृ.83
[6] कबीर -वाणी, पृ.82
[7] डॉ. जयराम मिश्र- नानक वाणी, पृ. 290
[8] बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 92

[9] डॉ.बलदेव वंशी, भारतीय संत परम्परा, पृ.129
[10] डॉ.हरिराम गुप्त- गुरु नानक एक जीवन चरित्र, सम्पादित पुस्तक, पृ.12
[11] डॉ.गिरिराज शरण अग्रवाल- गुरु नानक देव, पृ. 06
[12] डॉ.जयराम मिश्र- गुरु नानक देव; जीवन और दर्शन, पृ. 76
[13] वही. पृ. 16
[14] गुरु वचन सिंह तालिब- भारतीय साहित्य के निर्माता गुरुनानक, पृ. 7
[15] बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 93
[16] नानक- वाणी, विहागडे की वार श्लोक
[17] नानक- वाणी, आसा दी वार श्लोक
[18] रामचरित मानस,उत्तर काण्ड
[19] गुरु ग्रंथ साहिब,पृष्ठ 168 महला 4